चौमासा

वर्ष - 11 अंक - 35
जुलाई-अक्टूबर-94
आदिवासी और लोक कलाओं पर केन्द्रित

सम्पादन सलाहकार मंडल
श्यामाचरण दुबे, रामनारायण उपाध्याय,
निरंजन महावर

सम्पादक
कपिल तिवारी

सह सम्पादक
नवल शुक्ल

सहयोग
अशोक मिश्र

प्रसार
उर्मिला पारखे/प्रवीण गवान्डे

एक प्रति दस रुपये
वार्षिक पच्चीस रुपये
(सदस्यता शुल्क डाक व्यय सहित)

सम्पर्क
मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्
संस्कृति विभाग का भवन, आधार तल
वाणगंगा रोड, भोपाल - 462 003
☎ 551878

मुद्रक
एम.एम. ऑफसेट प्रिंटर्स
सदर मंजिल, भोपाल
☎ 542599

मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् का प्रकाशन

बिलासपुर का राउत नृत्य

राजेश गनोदवाले

मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ अँचल का धान का कटोरा कहा जाता है, कारण यहाँ धान की फसल का बाहुल्य है। यदि इसे थोड़ा संशोधित करें तो छत्तीसगढ़ अँचल लोक कलाओं का कटोरा भी हो सकता है। आज छत्तीसगढ़ की जितनी भी कलाएँ हैं - यथा पण्डवानी, भरथरी, पंथी, गम्मत, नाचा इन सभी कलाओं ने भारत ही नहीं अपितु विदेशों में भी धाक कायम कर सांस्कृतिक नक्शे में अपनी पहचान दर्ज की है। इसी कड़ी में अपनी सहजता, सुगमता, लयात्मकता के साथ लगभग विलक्षण दुलर्भता समेटे राउत नाच भी धीरे-धीरे किन्तु मजबूती पूर्वक अपनी उपस्थिति को दर्शाता जा रहा है। यूँ इस नृत्य का स्वरूप बेहद दुर्लभ उस प्रजाति का था जो अपने बेहद नाजुकपन के बावजूद, एक तरह से सोचे-समझे तरीके से, और ज्यादा अच्छा हो अगर हम कहें कि सुनियोजित तरीके से अपने को दबाए जाने के विरुद्ध कभी प्रतिरोध दर्ज न करने की भावना समेटे, बिलकुल उस गाय की ही तरह था जो अपने दूध दिये जाने के उपरान्त भी न दिये जाने का सा सलूक सहती खूटे से बँधी रहती है।

बदलते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश एवं औद्योगिक हमलों को सहने के उपरान्त न तो छत्तीसगढ़ अँचल की इन विविध कलाओं ने इस क्षेत्र का दामन छोड़ा न ही क्षेत्र ने। कलाओं में कुछ विरोधाभास अवश्य हो सकते हैं मसलन, इनकी समानान्तर संस्कृति या आधुनिकीकरण। बहरहाल हम इस वक्त चर्चा सिर्फ राउत नाच पर करना चाहते हैं इसलिये पुनः विषय पर लौटते हैं।

यादव, अहीर, ठेठवार, पहारिया, ग्वाला, गहिरा, देसहा, चरवाहा, बरदिहा ये भिन्न-भिन्न वे सम्बोधन हैं जो रावतों हेतु विभिन्न भागों में प्रचलित रीति अनुसार लिये जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण को अपना वंशज मानने वाले रावत स्वस्फूर्त यदुवंशी सम्बोधन स्वीकार करते हैं, लेकिन छत्तीसगढ़ में फैली इस प्राचीन श्रमजीवी जनजाति राउत के शाब्दिक अर्थ में हम पहुँचे तो पाएंगे कि शूरवीर, छोटा राजा, क्षत्रिय, वीर बहादुर पुरुष, सामन्त, सरकार जैसे कई सम्बोधनों की ध्वनि प्राप्त होती है। एक रोचक तथ्य यह भी है कि इनकी कुछ जातियाँ चूहें भी पचा जाती हैं, लेकिन गाँवों में दाऊ, महराज अथवा वे लोग जो अत्यधिक पूजा पाठ में विश्वास रखते हैं, इन्हें न केवल अपने रसोईघर में आने देते हैं वरन् इनके हाथ की बनी रसोई भी ग्रहण करते हैं। राउत शब्द पूर्व में राजपुत्र कहा जाता था, यह धारणा भी प्रचलित है। कहते हैं, यह अप्रभ्रंश होकर राजपुत्र, राजउत, राउत और अन्त में रावत पर आकर स्थिर हो गया।

इस सामूहिक नृत्य का प्रदर्शन वैसे तो सारे छत्तीसगढ़ में अपने स्थान विशेष की संस्कृतिनुरूप प्रसिद्ध हैं, लेकिन बिलासपुर नगर का यह नृत्य सारे संसार में अनूठा है। किसी भी जाति के लोक नृत्य में इतने विशाल पैमाने पर सम्पादित होने की वैधानिक जानकारी एवं प्रमाण नहीं मिलते। यह नृत्य पर्व छत्तीसगढ़ के रायपुर सम्भाग में दीपावली के आस-पास जबकि बिलासपुर सम्भाग में कार्तिक प्रबोधनी एकादशी से आरम्भ होकर पूरे पन्द्रह दिनों तक अबाध गति से चलता है। इस दौरान यदि बिलासपुर में आप जाएँ तो पाएंगे कि सारा बिलासपुर शहर एक तरह से रावत मय हो उठता है। जिधर नज़र जाती है उधर ही रावतों की टोलियाँ दिखाई पड़ती है। बिलासपुर को देखना एक तरह से रावतों को देखना हो जाता है।

इस नृत्य-पर्व को समारोह में परिवर्तित करने की आवश्यकता क्यों कर पड़ी इसके बारे में इस महोत्सव के संयोजक डॉ. कालीचरण यादव बताते हैं कि एक लम्बे समय से यह देखा जा रहा था कि मद्यपान की अतिशयता के कारण शौर्य की यह पूजा अपने ही आप

में निन्दनीय होती चली जा रही थी। सभ्य समाज से यह पर्व दूर होता जा रहा था। यही नहीं, यादव समाज के वे युवक जो पढ़-लिख कर चेतना प्राप्त कर रहे थे, अपने ही समाज के इस पुनीत-पर्व से कटते चले जा रहे थे। कुल मिलाकर यही देखने में आ रहा था कि यह पर्व मात्र बदले की भावना एवं रन्जिश से प्रेरित हो रहा था। खून-खराबा ही इसका मूल-उद्देश्य बन गया था। इसलिये सन् 1978 से हमने इस खूनी संघर्ष एवं अनियन्त्रित मद्यपान को थामने के तात्कालिक उद्देश्य से यह रावत-बाजार के साथ प्रसिद्ध हो, यह सोचकर एक स्वस्थ प्रतियोगिता का रूप देकर इसका विधिवत प्रतिवर्ष आयोजन करना आरम्भ किया।

छत्तीसगढ़ के रावत समुदाय का यह विशिष्ट नृत्य दीवाली के समय ही क्यों कर आरम्भ होता है। इसके पीछे भी मान्यता है। जैसा कि स्थानीय व्यक्तियों का स्थायी धन्धा कृषि कार्य है, और कृषि कार्य करनेवाला किसान वर्ष भर अपने खेत-खलिहानों में व्यस्त रहता है। प्रतिवर्ष जब इन्हें धान कटाई के उपरान्त अवकाश मिलता है तब बेहद आनन्दित वे स्वयं को महसूस करते हैं। साथ में वर्ष भर की मेहनत के नतीजे को सकारात्मक रूप में सामने पाकर निश्चिंत हो आनन्द में डूब कर जीवन की दूसरी सारी पीड़ाओं को अपने इस हर्ष में भूल जाते हैं। दूसरे दीपावली के कारण साफ-सफाई भी हो उठती है और सम्पूर्ण जीवन उत्सव-उमंग से दमकने लगता है। इसी समय कार्तिक एकादशी को रावत टोलियाँ घर-घर अपने मालिक से मिलने जाती हैं, एवं उनके घरों के मुख्य आँगन में गोबर, सेम पत्ती के रस, गेरु तथा चूने, पीली मिट्टी से कोई भी शुभ आकृति अधिकांशतः धन-देवता का चित्र निर्माण कर अपने मालिक का घर सदैव धन से परिपूर्ण रहे यह कामना करते हैं। इसी समय रावत गोल (टोली) कोठे (मवेशी बाँधने का स्थान) में भी जाता है, जहाँ वह गाय-भैंस के गले में-पलाश की जड़, मोर पंख, लाल-हरी रस्सी आदि के सम्मिश्रण से तैयार एक सुन्दर सी माला जिसे सुहई कहा जाता है, बाँधते है। इसके पार्श्व में एक तर्क यह भी है कि वर्ष भर काली-नकारात्मक शक्तियों से रक्षा कवच के रूप में सहायता करती हैं। इसके पूर्व वह मवेशियों की पूजा-अर्चना भी करते हैं। जब इस सारे कार्य को सम्पादित करने के उपरान्त वापस जाने के लिये निकलते हैं, तब ये गृह-स्वामी को बदले में ढेरों आशीष प्रदान करते हैं। यह आशीष कोई धन-सम्पदा न होकर वह शाब्दिक प्रेम होता है जिसमें गृह-स्वामी के लिए शुभकामनाएँ व आशीर्वाद छिपा रहता है। यह दो लाईन में तुक बंदी मिश्रित होता है जो दोहा कहलाता है। इसके साथ एक वैज्ञानिक कारण भी है-लगातार नृत्य करने के कारण इन्हें दोहे के पढ़े जाने के समय आराम मिलता चलता है, क्योंकि जैसे ही कोई नर्तक सदस्य अर..रर.. या तार सप्तक में हो.. हो.. की ध्वनि उच्चारता है वैसे ही टोली के सभी सदस्य थम जाते हैं। कबीर, सूर, तुलसी के साथ ये स्वनिर्मित दोहे भी पढ़ते हैं। इन दोहों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, समकालीन दबावों के साथ लोक-संस्कृति के वैविध्यपूर्ण रूप रेखांकित किये हुए रहते हैं।

रावत नृत्य श्रृंगार परक व शौर्य परक दोनों ही रूपों की छाया अपने में समेटे दिखता है। मात्र पुरुषों द्वारा ही किये जाने वाले इस नृत्य की वेशभूषा कम मनोहारी नहीं हैं, सिर में धोती की पगड़ी जिसे पागा कहते हैं, बाँधी जाती है। इस पूरी पगड़ी को कागज के फूलों की लम्बी माला से सजाया जाता है। पगड़ी में एक किनारे मोर-पंख की कलगी सजी होती है। रंगीन छींटदार सलूखा जो पूरी आस्तीन वाली कमीज का परम्परागत रूप है, पहना जाता है, पैरों में धोती या चोलना जो घुटनों के ऊपर तक कसा होता है। नीचे इसकी किनार रंगीन फून्दों से सजी रहती है। सीनें में कौड़ियों का बना एक जैकेटनुमा वस्त्र भी पहनते हैं। दोनों बाहों में कौड़ियों से निर्मित बँहकर यानी बाजूबन्द होता है। कमर में बड़े घुँघरुओं से सजा एक बेल्ट रहता है जिसे स्थानीय भाषा में जलाजल कहते है। रंगभूषा में और भी अल्हड़पन झलकता है। चेहरा पीली मिट्टी से पुता रहता है, यह रामरज कहलाती है, ऐसी मान्यता है कि यह वृंदावन की होनी चाहिये। आँख, ठोड़ी, गाल, माथा, भँवों के ऊपर रंग बिरंगा चन्दन का टीका रहता है, मुँह में पान, आँखों में चश्मा होता है। पैरों में भंदई होती थी, किन्तु अब काला जूता, लाल मोजा इसका चलन ही है। एक हाथ में तेंदू की लाठी, दूसरे हाथ में लोहे या पीतल की सुन्दर सी ढाल जिसके दोनों ओर नुकीले सिरे निकले रहते हैं, रखते हैं। फरी भी कभी-कभी पकड़ी जाती है। फरी हिरण के सींगों से बनी रहती है।

रावत नृत्य में शौर्य प्रदर्शन भी किया जाता है। इस दौरान ये तलवार, भाले, लाठी चालन और गुरुद नामक मारक अस्त्र जो एक फुट के गोल रिंग से बनी रहती है। इसके चारों ओर लम्बी चेन में गोल लकड़ी अथवा टीन के गुटके लगे रहते हैं। इसे मध्य भाग से पकड़ कर चलाया जाता है। इनकी टोलियों में प्रत्येक नर्तक दलों के अपने बाजे वाले होते हैं। गन्धर्व (गन्डवा) जाति के होने के फलस्वरूप बजाने वाले वाद्य को गन्डवा-बाजा कहा जाता है। इन वाद्यों में निशान, मोहरी, टिमकी, डफड़ा, गुदुम जैसे वाद्य मुख्य रहते हैं। इन वाद्यों को किसी दुकान में ढूँढना बेहद मुश्किल कार्य है। इस वाद्य के वादक स्वयं ही इसका निर्माण करते पाए गए हैं।

पुरुष कलाकारों द्वारा महिला वेश धारण कर नृत्य का चलन आजकल अनिवार्य होता जा रहा है जो गाने के साथ नृत्य भी करते चलते हैं। इस नृत्य में मड़ई की बेहद अहम भूमिका है। मड़ई लम्बे बाँस में गोलाकार कदम्ब, चम्पक, गोन्दल आदि वृक्षों की पत्तियों से किया जाता है। यह केवट जाति के लोगों द्वारा बनाया जाता है। मड़ई दो अर्थों में प्रयुक्त होती है। जहाँ बाजार बिहाने की परम्परा है वहाँ घूम-घूम कर, दूसरे किसी साफ-सुथरे स्थान में विधि विधान से इसके उपरान्त नर्तक गोल नाचकर इस मड़ई की परिक्रमा करते हुए अपने आनन्द को अभिव्यक्त करते हैं। बिलासपुर में इसके चलित रूप की ही मान्यता है, छत्तीसगढ़ के शेष भागों में मड़ई की स्थापना की जाती है।

सारे भारत वर्ष में एवं बाहरी देशों में भी जहाँ कहीं लोक संस्कृति का व्यापक चलन है वहाँ लोक नृत्य का स्वस्फूर्त एवं विशाल आयोजन होता हो इसके प्रमाण एवं वैधानिक जानकारी अभी तक नहीं हैं।